पाकिस्तान का सफरनामा-६

स्तंभ/अनन्तर/जनसत्ता/२३ अप्रैल, २००६

मूअनजो-दड़ो की गलियों में

ओम थानवी

सिंधु घाटी की धारा सिंध, पंजाब, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा आदि को पीछे छोड़कर बलूचिस्तान के मैदान यानी मेहरगढ़ तक पहुंच गई है। वहां की खुदाई ने इस सभ्यता के सात हजार साल ईसा पूर्व के प्रमाण मुहैया कराए हैं। जानकार कहते हैं कि आबोहवा रूठने की वजह से लोग सिंधु घाटी की तरफ उतर आए। यहां उन्होंने बहुत तरक्की की, खुशहाल हुए। फैलते हुए यह सभ्यता शिवालिक की तलहटी- यानी आज के चंडीगढ़- तक पहुंच गई। छह सौ साल की अपूर्व समृद्धि के बाद वह हमेशा के लिए सिमट गई।

बहरहाल, अभी भी मूअनजो-दड़ो और हड़प्पा प्राचीन भारत के ही नहीं, दुनिया के दो सबसे पुराने नियोजित शहर माने जाते हैं। ये सिंधु घाटी सभ्यता के परवर्ती यानी परिपक्व दौर के शहर हैं। खुदाई में और शहर भी मिले हैं। लेकिन मूअनजो-दड़ो ताम्र काल के शहरों में सबसे बड़ा है। वह सबसे उत्कृष्ट भी है। व्यापक खुदाई यहीं पर संभव हुई। बड़ी तादाद में इमारतें, सड़कें, धातु-पत्थर की मूर्तियां, चाक पर बने चित्रित भाण्डे, मुहरें, साजो-सामान और खिलौने आदि मिले। सभ्यता का अध्ययन संभव हुआ। उधर हड़प्पा के ज्यादातर साक्ष्य रेललाइन बिछने के दौरान 'विकास' की भेंट चढ़ गए। खुदाई से पहले हड़प्पा को ठेकेदारों और ईंट-चोरों ने खोद डाला था।

मूअनजो-दड़ो के बारे में धारणा है कि अपने दौर में वह घाटी की सभ्यता का केंद्र रहा होगा। यानी एक तरह की राजधानी। माना जाता है यह शहर दो सौ हैक्टर क्षेत्र में फैला था। आबादी कोई पचासी हजार थी। जाहिर है, पांच हजार साल पहले यह आज के 'महानगर' की परिभाषा को भी लांघता होगा।

दिलचस्प बात यह है कि सिंधु घाटी मैदान की संस्कृति थी, पर पूरा मूअनजो-दड़ो छोटे-मोटे टीलों पर आबाद था। ये टीले प्राकृतिक नहीं थे। कच्ची और पक्की दोनों तरह की ईंटों से धरती की सतह को ऊंचा उठाया गया था, ताकि सिंधु का पानी बाहर पसर आए तो उससे बचा जा सके।

मूअनजो-दड़ो की खूबी यह है कि इस आदिम शहर की सड़कों और गलियों में आप आज भी घूम-फिर सकते हैं। यहां की सभ्यता और संस्कृति का सामान भले अजायबघरों की शोभा बढ़ा रहा हो, शहर जहां था अब भी वहीं है। आप इसकी किसी भी दीवार पर पीठ टिका कर सुस्ता सकते हैं। वह एक खंडहर क्यों न हो, किसी घर की देहरी पर पांव रख कर आप सहसा सहम सकते हैं, रसोई की खिड़की पर खड़े होकर उसकी गंध महसूस कर सकते हैं या शहर के किसी सुनसान मार्ग पर कान देकर उस बैलगाड़ी की रुन-झुन सुन सकते हैं जिसे आपने पुरातत्त्व की तस्वीरों में मिट्टी के रंग में देखा है। यह सच है कि यहां किसी आंगन की टूटी-फूटी सीढ़ियां अब आपको कहीं नहीं ले जातीं; वे आकाश की तरफ अधूरी रह जाती हैं। लेकिन उन अधूरे पायदानों पर खड़े होकर अनुभव किया जा सकता है कि आप दुनिया की छत पर हैं; वहां से आप इतिहास को नहीं, उसके पार झांक रहे हैं।

सबसे ऊंचे चबूतरे पर बड़ा बौद्ध स्तूप है। मगर यह मूअनजो-दड़ो की सभ्यता के बिखरने के बाद एक जीर्ण-शीर्ण टीले पर बना। कोई पचीस फुट ऊंचे चबूतरे पर छब्बीस सदी पहले बनी ईंटों के दम पर स्तूप को आकार दिया गया। चबूतरे पर भिक्षुओं के कमरे भी हैं। १९२२ में जब राखालदास बनर्जी यहां आए, तब वे इसी स्तूप की खोजबीन करना चाहते थे। इसके गिर्द खुदाई शुरू करने के बाद उन्हें इलहाम हुआ कि यहां ईसा पूर्व के निशान हैं। धीमे-धीमे यह खोज विशेषज्ञों को सिंधु घाटी सभ्यता की देहरी पर ले आई।

पर्यटक बंगले से एक सर्पिल पगडंडी पार कर हम सबसे पहले इसी स्तूप पर पहुंचे। पहली ही झलक ने हमें अपलक कर दिया। इसे नागर भारत का सबसे पुराना लैंडस्केप कहा गया है। यह शायद सबसे रोमांचक भी है। न आकाश बदला है, न धरती। पर कितनी सभ्यताएं, इतिहास और कहानियां बदल गईं। ठहरे हुए लैंडस्केप में हजारों साल से लेकर पल भर पहले तक की धड़कन बसी हुई है। इसे देखकर सुना जा सकता है। भले ही किसी जगह के बारे में हमने कितना पढ़-सुन रखा हो, तस्वीरें या वृत्तचित्र देखे हों, देखना अपनी आंख से देखना है। बाकी सब आंख का झपकना है। जैसे यात्रा अपने पांव चलना है। बाकी सब कदम-ताल है।

मौसम जाड़े का था, पर दुपहर की धूप बहुत कड़ी थी। सारे आलम को जैसे एक फीके रंग में रंगने की कोशिश करती हुई। यह इलाका राजस्थान से बहुत मिलता-जुलता है। रेत के टीबे नहीं हैं। खेतों का हरापन यहां है। मगर बाकी वही खुला आकाश, सूना परिवेश; धूल, बबूल और ज्यादा ठंड, ज्यादा गरमी। मगर यहां की धूप का मिजाज जुदा है। राजस्थान की धूप पारदर्शी है। सिंध की धूप चौंधियाती है। तस्वीर उतारते वक्त आप कैमरे में जरूरी पुर्जे न घुमाएं तो ऐसा जान पड़ेगा जैसे दृश्यों के रंग उड़े हुए हों।

पर इससे एक फायदा हुआ। हमें हर दृश्य पर नजरें दुबारा फिरानी पड़तीं। इस तरह बार-बार निहारें तो दृश्य जेहन में ऐसे ठहरते हैं मानो तस्वीर देखकर उनकी याद ताजा करने की कभी जरूरत न पड़े।

स्तूप वाला चबूतरा मूअनजो-दड़ो के सबसे खास हिस्से के एक सिरे पर स्थित है। इस हिस्से को पुरातत्त्व के विद्वान 'गढ़' कहते हैं। चारदीवारी के भीतर ऐतिहासिक शहरों के सत्ता-केंद्र अवस्थित होते थे, चाहे वह राजसत्ता हो या धर्मसत्ता। बाकी शहर गढ़ से कुछ दूर बसे होते थे। क्या यह रास्ता भी दुनिया को मूअनजो-दड़ो ने दिखाया?

मूअनजो-दड़ो की सभी अहम- और अब दुनिया भर में प्रसिद्ध- इमारतों के खंडहर चबूतरे के पीछे यानी पश्चिम में हैं। इनमें 'प्रशासनिक' इमारतें, सभाभवन, ज्ञानशाला और कोठार हैं। वह आनुष्ठानिक महाकुण्ड (ग्रेट बाथ) भी जो सिंधु घाटी सभ्यता के अद्वितीय वास्तुकौशल को स्थापित करने के लिए अकेला ही काफी माना जाता है। असल में यहां यही एक निर्माण है जो अपने मूल स्वरूप के बहुत नजदीक बचा रह सका है। बाकी इमारतें इतनी उजड़ी हुई हैं कि कल्पना और बरामद चीजों के जोड़ से उनके उपयोग का अंदाजा भर लगाया जा सकता है।

मूअनजो-दड़ो नगर नियोजन की अनूठी मिसाल है: इस जुमले का मतलब आप बड़े चबूतरे से नीचे की तरफ देखते हुए सहज ही भांप सकते हैं। इमारतें भले खंडहरों में तब्दील हो चुकी हों, मगर 'शहर' की सड़कों और गलियों के विस्तार को साफ करने के लिए ये खंडहर काफी हैं। यहां की कमोबेश सारी सड़कें सीधी हैं या फिर आड़ी। आज वास्तुकार इसे 'ग्रिड प्लान' कहते हैं। आज की सेक्टर-मार्का कॉलोनियों में हमें आड़ा-सीधा 'नियोजन' बहुत मिलता है। लेकिन वह रहन-सहन को नीरस बनाता है। शहरों में नियोजन के नाम पर भी हमें अराजकता ज्यादा हाथ लगती है। ब्रासीलिया या चंडीगढ़ और इस्लामाबाद 'ग्रिड' शैली के शहर हैं जो आधुनिक नगर नियोजन के प्रतिमान ठहराए जाते हैं, लेकिन उनकी बसावट शहर के खुद विकसने का कितना अवकाश छोड़ती है इस पर बहुत बहस हो सकती है।

मूअनजो-दड़ो की साक्षर सभ्यता एक सुसंस्कृत समाज की स्थापना थी, लेकिन उसमें नगर नियोजन और वास्तुकला की आखिर कितनी भूमिका थी?

स्तूप वाले चबूतरे के पीछे 'गढ़' और ठीक सामने 'उच्च' वर्ग की बस्ती है। उसके पीछे पांच किलोमीटर दूर सिंधु बहती है। पूरब की इस बस्ती से दक्षिण की तरफ नजर दौड़ाते हुए पूरा पीछे घूम जाएं तो आपको मूअनजो-दड़ो के खंडहर हर जगह दिखाई देंगे। दक्षिण में जो टूटे-फूटे घरों का जमघट है, वह कामगारों की बस्ती है। कहा जा सकता है इतर वर्ग की। संपन्न समाज में वर्ग भी होंगे। लेकिन क्या निम्न वर्ग यहां नहीं था? निम्न वर्ग के घर, कहते हैं, इतनी मजबूत सामग्री के नहीं रहे होंगे कि पांच हजार साल टिक सकें। उनकी बस्तियां और दूर रही होंगी। यह भी है कि सौ साल में अब तक इस इलाके के एक-तिहाई हिस्से की खुदाई ही हो पाई है। अब वह भी बंद हो चुकी है।

हम पहले स्तूप के टीले से महाकुण्ड के विहार की दिशा में उतरे। दाईं तरफ एक लंबी गली दीखती है। इसके आगे महाकुण्ड है। पता नहीं सायास है या संयोग कि धरोहर के प्रबंधकों ने उस गली का नाम दैव मार्ग (डिविनिटि स्ट्रीट) रखा है। माना जाता है कि उस सभ्यता में सामूहिक स्नान किसी अनुष्ठान का अंग होता था। किसी छोटे स्वीमिंग-पूल की सी शक्ल वाला कुण्ड करीब चालीस फुट लंबा और पच्चीस फुट चौड़ा है। गहराई सात फुट। कुण्ड में उत्तर और दक्षिण से सीढ़ियां उतरती हैं। इसके तीन तरफ साधुओं के कक्ष बने हुए हैं। उत्तर में दो पांत में आठ स्नानघर हैं। इनमें किसी का द्वार दूसरे के सामने नहीं खुलता। सिद्ध वास्तुकला का यह भी एक नमूना है।

इस कुण्ड में खास बात पक्की ईंटों का जमाव है। कुण्ड का पानी रिस न सके और बाहर का 'अशुद्ध' पानी कुण्ड में न आए, इसके लिए कुण्ड के तल में और दीवारों पर ईंटों के बीच चूने और चिरोड़ी के गारे का इस्तेमाल हुआ है। पार्श्व की दीवारों के साथ दूसरी दीवार खड़ी की गई है जिसमें डामर का प्रयोग है। कुण्ड के पानी के बंदोबस्त के लिए एक तरफ कुआं है। दोहरे घेरे वाला यह अकेला कुआं है। इसे भी कुण्ड के पवित्र या आनुष्ठानिक होने का प्रमाण माना गया है। कुण्ड से पानी को बाहर बहाने के लिए नालियां हैं। इनकी खासियत यह है कि ये भी पक्की ईंटों से बनी हैं और ईंटों से ढंकी भी हैं।

पक्की और आकार में समरूप धूसर ईंटें तो सिंधु घाटी सभ्यता की विशिष्ट पहचान मानी ही गई हैं, ढंकी हुई नालियों का उल्लेख भी पुरातात्त्विक विद्वान और इतिहासकार जोर देकर करते हैं। जल-निकासी का ऐसा सुव्यवस्थित बंदोबस्त इससे पहले के आदि इतिहास में नहीं मिलता।

महाकुण्ड के बाद हमने 'गढ़' की 'पक्रिमा' की। कुण्ड के दूसरी तरफ विशाल कोठार है। कर के रूप में हासिल अनाज शायद यहां जमा किया जाता था। इसके निर्माण रूप खासकर चौकियों और हवादारी को देखकर ऐसा कयास लगाया गया है। यहां नौ-नौ चौकियों की तीन कतारें हैं। उत्तर में एक गली है जहां बैलगाड़ियों का- जिनके प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं- ढुलाई के लिए आवागमन होता होगा। ठीक इसी तरह का कोठार हड़प्पा में भी पाया गया है।

यह अब जगजाहिर है कि सिंधु घाटी के दौर में व्यापार ही नहीं, उन्नत खेती भी होती थी। बरसों यह माना जाता रहा कि सिंधु घाटी के लोग अन्न उपजाते नहीं थे, उसका आयात करते थे। नई खोज ने इस ख्याल को निर्मूल साबित किया है। बल्कि अब कुछ विद्वान मानते हैं वह मूलत: खेतिहर और पशुपालक सभ्यता ही थी। लोहा तब नहीं था। पर पत्थर और तांबे की बहुतायत थी। पत्थर सिंध में ही था, तांबे की खानें राजस्थान में थीं। इनके उपकरण खेती-बाड़ी में प्रयोग किए जाते थे। जबकि मिस्र और सुमेर में चकमक और लकड़ी के उपकरण इस्तेमाल होते थे। इतिहासकार इरफान हबीब ने सिंधु घाटी पर एक सुंदर पुस्तिका (मोनोग्राफ) लिखी है। उनके मुताबिक यहां के लोग रबी

की फसल लेते थे। कपास, गेहूं, जौ, सरसों और चने की उपज के पुख्ता सबूत खुदाई में मिले हैं। वह सभ्यता का तर-युग था जो धीमे-धीमे सूखे में ढल गया।

विद्वानों का मानना है कि यहां ज्वार, बाजरा और रागी की उपज भी होती थी। लोग खजूर, खरबूजे और अंगूर उगाते थे। झाड़ियों से बेर जमा करते थे। कपास की खेती भी होती थी। कपास को छोड़कर बाकी सबके बीज मिले हैं और उन्हें परखा गया है। कपास के बीज तो नहीं, पर सूती कपड़ा मिला है। ये दुनिया में सूत के दो सबसे पुराने नमूनों में एक है। दूसरा सूती कपड़ा तीन हजार ईसा पूर्व का है जो जॉर्डन में मिला। मूअनजो-दड़ो में सूत की कताई-बुनाई के साथ रंगाई भी होती थी। रंगाई का एक छोटा कारखाना खुदाई में माधोस्वरूप वत्स को मिला था। छालटी (लिनन) और ऊन कहते हैं यहां सुमेर से आयात होते थे। शायद सूत उनको निर्यात होता हो। जैसा कि बाद में सिंध से मध्य एशिया और यूरोप को सदियों हुआ। प्रसंगवश, मेसोपोटामिया के शिलालेखों में मूअनजो-दड़ो के लिए 'मेलुहा' शब्द का संभावित प्रयोग मिलता है।

महाकुण्ड के उत्तर-पूर्व में एक बहुत लंबी-सी इमारत के अवशेष हैं। इसके बीचोबीच खुला बड़ा दालान है। तीन तरफ बरामदे हैं। इनके साथ कभी छोटे-छोटे कमरे रहे होंगे। पाकिस्तान पुरातत्त्व विभाग के दक्षिण केंद्र के निदेशक एहसान नदीम का कहना है कि धार्मिक अनुष्ठानों में ज्ञानशालाएं सटी हुई होती थीं, उस नजरिए से इसे 'कॉलेज ऑफ प्रीस्ट्स' माना जा सकता है। दक्षिण में एक और भग्न इमारत है। इसमें बीस खंभों वाला एक बड़ा हॉल है। नदीम के मुताबिक यह राज्य सचिवालय, सभा-भवन या कोई सामुदायिक केंद्र रहा होगा।

गढ़ की चारदीवारी लांघ कर हम बस्तियों की तरफ बढ़े। ये 'गढ़' के मुकाबले छोटे टीलों पर बनी हैं, इसलिए इन्हें 'नीचा नगर' कहकर भी पुकारा जाता है। खुदाई की प्रक्रिया में टीलों का आकार घट गया है। कहीं-कहीं वे फिर जमीन से जा मिले हैं और बस्ती के कुएं लगता है जैसे मीनारों की शक्ल में धरती छोड़कर बाहर निकल आए हैं।

पूरब की बस्ती 'रईसों की बस्ती' है। हालांकि आज के युग में पूरब की बस्तियां गरीबों की बस्तियां मानी जाती हैं। मूअनजो-दड़ो इसका उलट था। यानी बड़े घर, चौड़ी सड़कें, ज्यादा कुएं। मूअनजो-दड़ो के सभी खण्डहरों को खुदाई कराने वाले पुरातत्त्ववेत्ताओं का संक्षिप्त नाम दे दिया गया है। जैसे 'डीके' हलका- दीक्षित काशीनाथ की खुदाई। यों यह 'डीके' क्षेत्र ही दोनों बस्तियों में सबसे महत्त्वपूर्ण है। शहर की मुख्य सड़क (फर्स्ट स्ट्रीट) यहीं पर है। यह बहुत लंबी सड़क है, मानो कभी पूरे शहर को नापती हो। अब यह आधा मील बची है। इसकी चौड़ाई तैंतीस फुट है। मूअनजो-दड़ो से तीन तरह के वाहनों के साक्ष्य मिले हैं। इनमें सबसे चौड़ी बैलगाड़ी रही होगी। इस सड़क पर दो बैलगाड़ियां एक साथ आसानी से आ-जा सकती हैं। यह सड़क वहां पहुंचती है, जहां कभी 'बाजार' था।

इस सड़क के दोनों ओर घर हैं। लेकिन सड़क की ओर सारे घरों की सिर्फ पीठ दिखाई देती है। यानी कोई घर सड़क पर नहीं खुलता; उनके दरवाजे अंदर गलियों में हैं। दिलचस्प संयोग है कि चंडीगढ़ में ठीक यही शैली पचास साल पहले ल' कार्बूजिए ने इस्तेमाल की। वहां भी कोई घर मुख्य सड़क पर नहीं खुलता। आपको किसी के घर जाने के लिए पहले मुख्य सड़क से सेक्टर के भीतर दाखिल होना पड़ता है, फिर घर की गली में, फिर घर में। क्या कार्बूजिए ने यह सीख मूअनजो-दड़ो से ली? कहते हैं, कविता में से कविता निकलती है। कलाओं की तरह वास्तुकला में भी कोई प्रेरणा चेतन-अवचेतन ऐसे ही सफर करती होगी!

ढंकी हुई नालियां मुख्य सड़क के दोनों तरफ समांतर दिखाई देती हैं। बस्ती के भीतर भी इनका यही रूप है। हर घर में एक स्नानघर है। घरों के भीतर से पानी या मैले की नालियां बाहर हौदी तक आती हैं और फिर नालियों के जाल से जुड़ जाती हैं। कहीं-कहीं वे खुली हैं, पर ज्यादातर बंद हैं। स्वास्थ्य के प्रति मूअनजो-दड़ो के बाशिंदों के सरोकार का यह बेहतर उदाहरण है। बस्ती के भीतर छोटी सड़कें हैं और उनसे छोटी गलियां भी। छोटी सड़कें नौ से बारह फुट तक चौड़ी हैं। इमारतों से पहले जो चीज दूर से ध्यान खींचती है, वह है कुओं का प्रबंध। ये कुएं भी पकी हुई एक ही आकार की ईंटों से बने हैं। इरफान हबीब कहते हैं सिंधु घाटी सभ्यता संसार में पहली ज्ञात संस्कृति है जो कुएं खोद कर भू-जल तक पहुंची। उनके मुताबिक केवल मूअनजो-दड़ो में सात सौ के करीब कुएं थे। बड़े व्यापारियों और किसानों के आंगन में शायद अपने कुएं रहे होंगे।

नदी, कुएं, कुण्ड, स्नानागार और बेजोड़ जल-निकासी। क्या सिंधु घाटी सभ्यता को हम जल-संस्कृति कह सकते हैं?

कैप्शन

१. मूअनजो-दड़ो के उजड़ने के छब्बीस सौ साल बाद उसके सबसे बड़े टीले पर बना एक बौद्ध स्तूप
२. महाकुण्ड: पुरातन वास्तुकला की नायाब मिसाल
३. सिंधु घाटी के कुएं: जल-संस्कृति
४. मूअनजो-दड़ो की एक गली